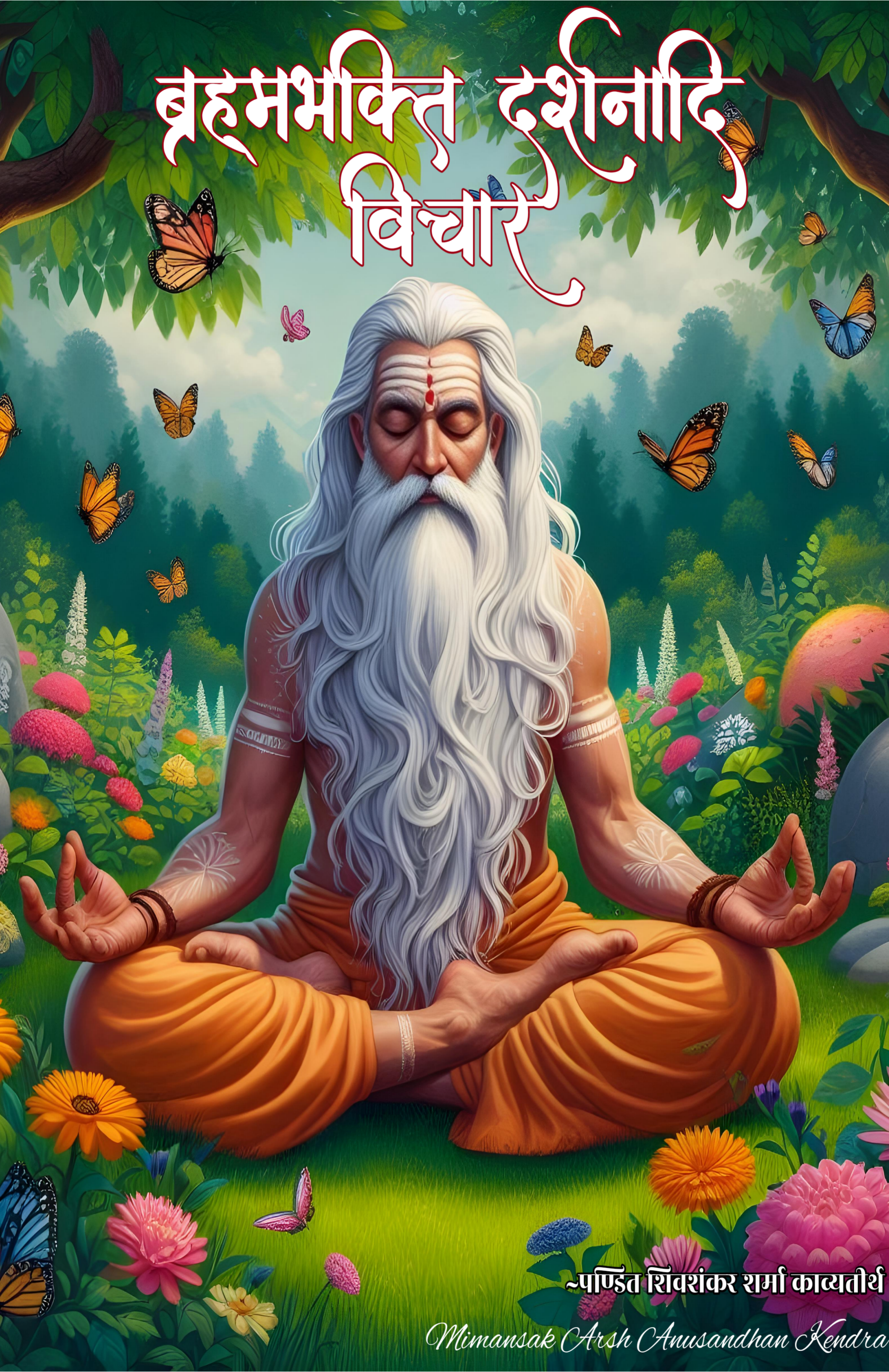
ब्रह्मभक्ति दर्शनादि विचार
~पण्डित शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ
Mimansak Arsh Anusandhan Kendra

॥ ओ३म् ॥

-:पुस्तक:-

॥ ब्रह्म-भक्ति-दर्शनादि विचारः ॥

-:लेखक:-

॥ महमहोपाध्याय पण्डित शिवशंकर शर्मा ॥

-:सम्पादक:-

॥ वैदिक मीमांसक ॥

-:प्रकाशक:-

॥ मीमांसक आर्ष अनुसन्धान केन्द ॥

॥ ब्रह्म-भक्ति-दर्शनादि विचारः ॥

अत्र केचित् प्रत्यवतिष्ठन्ते। इयत्तया विद्याः परिच्छेत्तुं न शक्यन्ते। यावन्तो हि पदार्थास्तावत्यो विद्यः। तावत् पृथिवीस्थानामेव पदार्थजाताना मानन्त्यम्। चेतनानामेव चतुरशीतिकोटिसंख्याः पौराणिकैर्गण्यन्ते। असंख्येया ओषधयो देशभेदेन विलक्षणाः। सामुद्रिकानां यादसां ज्ञानमपि न समस्ति मनुष्याणाम्। इत्थमल्पायुर्मनुष्यो यदि सर्वपदार्थस्य नामावगणयितुं साहसिको भवेत्तर्हि सम्पूर्णेनाऽऽयुषा नामगणनाया अपि पर्य्यवसानं न भवेत्। कुतस्तरां तन्निबन्धनाया विद्याया लाभः।

यहां कोई शङ्का करते हैं। क इतनी ही विद्याएं हैं यह नहीं कह सकते, क्योंकि जितने पदार्थ उतनी विद्याएं। प्रथम पृथिवीस्थ पदार्थों का ही अन्त नहीं। पौराणिक कहते हैं कि ८४ कोटि योनियां चेतनों की हैं। ओषधियां असंख्येय देश भेद से बड़ी-बड़ी विलक्षण हैं। सामुद्रिक सकल जन्तुओं का ज्ञान भी मनुष्यों को नहीं है। इस प्रकार अल्पायु मनुष्य यदि सब पदार्थ के नाम ही गिनने के लिये साहस करे तो सम्पूर्ण आयु से भी नामगणना की समाप्ति न होगी। तब कैसे तत्सम्बन्धी विद्या के लाभ की आशा हो सकती है।

अतः सर्वं परित्यज्य मातापितृसहस्रेभ्योऽपि अधिक- वात्सल्यशाली भगवानेव प्रतिक्षणं शुश्रूषितव्यः। स एव तुष्टो बुद्धिं भक्ति चान्तेऽत्यन्तसुखं कैवल्यञ्च प्रदास्यति। किं बहुलायासैरपि असाध्यया मनोरथखेदकर्या विद्यया। तथा चाभाणकः "अर्के चेन्मधु विन्देत, किमर्थं पर्वतं व्रजेत्। इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ, को विद्वान् यत्नमाचरेत्"। अतो नेदं साहसं विचारचारु प्रतिभाति मे। समाधत्ते। मनुष्यसर्जने यद्येवमाशयवान् भगवान् स्यात् तर्हीदृशी सृष्टिरेवानुचिता स्यात्। कथमिव। शृणु। इतरजीवेभ्योऽधिका जिज्ञासावती च मनुष्यबुद्धिरस्तीत्यत्र न कोऽपि प्रश्नावकाशः। सा किमर्थेति चिन्तायां जाग्रत्यां किमुत्तरीष्यति भवान्। अन्ये जीवा ब्रह्म विज्ञानायाक्षमा वयन्तु तया बुद्ध्या तज्ज्ञातुं समर्थाः। अतो ब्रह्मविज्ञानार्थेयं बुद्धिरिति प्रतिवक्ष्यामि। सत्यमेतत्। तर्हिसमायातो मम राद्धान्तः।

इस हेतु सब परित्याग कर सहस्रों माता पिता से कहीं बढ़कर वात्सल्यशाली भगवान ही प्रतिक्षण शुश्रूषितव्य है। वहीं तुष्ट होकर बुद्धि भक्ति और अन्त में अत्यन्त सुखकारी कैवल्य को भी देवेगा, बहुत परिश्रम से भी असाध्य और मनोरथ को खेद पहुंचानेहारी विद्याओं से क्या प्रयोजन है ? इस विषय में एक आभाणक है "अर्के चेत् मधु विन्देत" इत्यादि१ इस हेतु मुझ को यह साहस विचारचारु प्रतिभासित नहीं होता। (समाधान) मनुष्य की सृष्टि करने में भगवान् का यदि ऐसा ही आशय हो तो ऐसी सृष्टि करनी ही

अनुचित थी। कैसे सो सुनो-अन्य जीवों से मनुष्य की अधिक और जिज्ञासा करनेहारी बुद्धि है इसमें कोई प्रश्नावकाश नहीं, वह बुद्धि किस प्रयोजन के लिये है? ऐसी चिन्ता जागृत होने पर आप क्या उत्तर देवेंगे। अन्य जीव साधारण बुद्धि से ब्रह्म जानने को असमर्थ हैं। परन्तु हम मनुष्य मानवी बुद्धि से उसको जान सकते, इस हेतु ब्रह्म विज्ञान के लिये वह बुद्धि है यह उत्तर मैं दूंगा। सत्य है। तब मेरा ही सिद्धान्त आया।

- १- घर के कोने में ही यदि मधु मिल जाय तो कौन मूर्ख मधु के लिये पर्वत पर जायगा। इष्ट अर्थ की अच्छे प्रकार सिद्धि हो जाने पर कौन विद्वान् यत्न करे।

कथय तर्हि कथं ब्रह्मपरिचयः। अहमिदं वच्मिईश्वरनामधेय मानिशं जपिष्यामि। स प्रसन्नः स्वात्मानं दर्शयिष्यति। तेनैव कृतकृत्यता स्यात्। तथाहुः कठशाखिनः - "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष वृणुते तनूं स्वाम्॥"

इयं श्रुतिः प्रवचनमेधाश्रवणादीनां ब्रह्मदर्शकत्वं निवारयति बोधयति च केवलां भक्तिम्। तद्युक्तायैव सहीश्वरो वरं ददद् दृष्टोस्ति। आथर्वाणिका अप्येवं मन्यन्ते "तमेवैकं जानथ आत्मान मन्यावाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः" एतेन प्रतीयते भक्तिरेव गरीयसी। सा न कदापि विद्यामधिकरोति। अपेक्षते तु केवला मनन्यगामिनीं प्रीतिम्। सा नाह विद्याया नवा पदार्थविज्ञानाज्जायते। अतः कृतममामाणिक्या विद्यया।

अच्छा यह कहो, ब्रह्मपरिचय का कौनसा उपाय है ?। इसके उत्तर में मैं कहूंगा कि ईश्वर का नाम जपूंगा। वह प्रसन्न हो अपना आत्मा (शरीर) दिखलावेगा और उससे सर्वत्र कृतकृत्यता होगी। कठशाखी भी ऐसा ही कहते हैं।

(नायमात्मा०) यह परमात्मा वेदादिकों के व्याख्यानों से, सूक्ष्म बुद्धि से अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण से, अथवा विविध तर्क-वितर्कादि से प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिसके ऊपर उसकी कृपा होती है उस भक्त को निज शरीर वह भक्तवत्सल दिखला देता है।

यह श्रुति साक्षात् निषेध करती है कि प्रवचन, मेधा और श्रवणादिक उपायों से ईश्वर का दर्शन नहीं होता और भक्ति को बतलाती है। क्योंकि भक्तियुक्त पुरुष को ही वर देता हुआ श्रीभगवान् देखा गया है। आथर्वणिक भी ऐसा ही कहते हैं (तमेवैकम्०) हे शिष्यो! हे मनुष्यो! उसी एक परमात्मा को अच्छे प्रकार जानो। अन्य व्यर्थ व्याख्यानादिकों को त्यागो। यही परमात्मा अमृत का सेतु है। इससे भक्ति ही श्रेष्ठ प्रतीत होती उस भक्ति में विद्या का

अधिकार नहीं। वह केवल अनन्यगामिनी प्रीति चाहती है क्योंकि वह भक्ति न विद्या से न पदार्थविज्ञान से उत्पन्न होती, इस हेतु अप्रामाणिक विद्या से क्या लाभ होगा।

समाधत्ते। किं च भोः, त्वमीश्वरं मन्यसे जीवात्मानमपि तस्मात् पृथङ् मन्यसे। जीवात्मा द्रष्टास्ति। ईश्वरोऽपिद्रष्टा सर्वव्यापकश्चस्तीत्यत्रापि न कश्चित्सन्देहः। तर्हि विभावय-जीवात्मसन्निधौ सर्वदेश्वरः वर्ततेतरां सर्वव्यापकत्वात्। तर्हि सदैष जीव ईश्वरं न पश्यति किम् ? अन्धो नाम न किमपि पश्येत्। नायमात्मान्धः। तथाहं त्वां प्रत्यासन्नं साक्षात् पश्यामि एवमेवात्मा परमात्मानं सन्निहितं कथं न पश्येत् ? एतेनात्मा प्रतिक्षणमेवेशं पश्यतीति फलति। आत्मा हृदि तिष्ठति "हृद्येष आत्मेति" श्रुतेः तत्र ब्रह्मणोऽपि सद्भावात् सदा दर्शनं भवतीति कः सन्देहः। के वादिन एतत्प्रतिषेधेयुः। अथ कश्चिद वादी वदाति स्यादेतत्। अत्रायं सन्देह उदेति । ब्रह्म तु बाह्ये चाभ्यन्तरे च सममेवास्ति। इत्थं यथा बाह्यतो न तस्य दर्शनं तथाऽभ्यन्तरतोऽपि न भवतीति प्रतीयते। अन्यच्च अभ्यन्तरतो याद तस्य दर्शनमुपौति तर्हि कथं न स्वयमेव वक्ति जीवात्मा "अहमीशं पश्यामीति" न तु केषांचिदप्येष प्रत्ययः कदाचिदाप दृष्टः श्रुतश्च।

(समाधान) सुनो तुम ईश्वर को और जीवात्मा को भी उससे पृथक् मानते हो। जीवात्मा देखनेहारा है, ईश्वर सर्व व्यापक द्रष्टा है। इन बातों में कुछ सन्देह नहीं है। तब अब विचारो जीवात्मा की सन्निधि में ईश्वर सर्वदा ही रहता है। क्योंकि वह व्यापक है। तब यह जीव ईश्वर को सदा नहीं देखता है? क्या-अन्धा भले ही न देखे। परन्तु यह आत्मा अन्धा नहीं। इस हेतु इस से यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा ईश्वर को प्रतिक्षण देखा ही करता, आत्मा हृदय में रहता है यह श्रुति कहती है वहां ब्रह्म की भी सत्ता है। तब जीव को सदा ईश्वर का दर्शन होता इसमें क्या सन्देह है। कौन वादी इसको निषेध कर सकता है। वादी कहता है ऐसा ही हो, परन्तु यहां एक सन्देह उदित होता है। ब्रह्म तो बाहर भीतर दोनों में समभाव से है जैसे बाहर से उसका दर्शन नहीं वैसे ही अभ्यन्तर से भी दर्शन नहीं होता होगा ऐसी प्रत्यक्ष प्रतीति होती है। और भी, यदि अभ्यन्तर से यह जीवात्मा दर्शन पाता तब स्वयं जीवात्मा क्यों नहीं अन्य लोगों से कहा करता है कि मैं ईश्वर को देखता हूँ। अथवा तब उसके दर्शन के लिये इतना उत्सुक ही क्यों सदा रहता है।

अतोऽभ्यन्तरेऽपि न दर्शनाभ्युपगमनमिति मन्ये। सिद्धान्तीनैतद्विचारसहम् । कथमिव-अभ्यन्तरे न कोऽपि प्रतिबन्धों येन युक्तो न पश्येत्। बाह्येत्वेष सर्वं स्थूलकरणैराचराति। तेषां स्थूलकरणानां सूक्ष्मतमे ब्रह्माणि न प्रवेशः। एष प्रत्यक्ष विषयः सर्वेषां परीक्षकापरीक्षकाणां

सामान्येन। वहिर्गतमीश्वरं हृदिस्थो जीवः कथं स्वयं पश्येत् शरीरव्यवधानात् । अन्तःस्थस्य न किमपि व्यवधानम्। अतस्तत्र कथन्न पश्येत्। तर्हि कथन्नवक्तीति अभाषणस्य त्वेतत्कारणम्। बाह्यतः स्थूलकरणैर्यद् यत् किमपि संचिनोति तत्तत् बाह्यतः प्रकाशयति। अभ्यन्तरविज्ञातमभ्यन्तरे तु प्रकाशयतीति नियमो दृश्यते। कथमिव-यतः सर्वे वादिनो ज्ञानवानात्मेति स्वीकुर्वन्ति। एवं भूतोऽपि। "अयं सर्पोस्ति, अस्य दंशनेन जनो म्रियते, अतो नायं हस्तेन स्पर्शनीयः। अयं विषोऽस्ति, अस्य पानेन मृत्युर्भवति अतो न पेय" इत्यादीनि वस्तु-ज्ञानानि वाह्यतो यावन्न लभते तावत् किमपि न जानाति न किमप्याविष्करोति । अतः प्रतिबन्धकाभावादन्तर्दर्शनं भावतीत्यत्र तु न संशयितव्यम्।

और ऐसा प्रत्यक्ष भी किन ही को नहीं देखा सुना गया। इस हेतु अभ्यन्तर में दर्शन की प्राप्ति नहीं होती, सिद्धान्ती कहता है यह आपका कथन विचार योग्य नहीं । कैसे, अभ्यन्तर में कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। जिस से युक्त हो आत्मा परमात्मा को न देख सके। यह जीवात्मा बाह्य में स्थूलेन्द्रियों से सब काम करता है उन स्थूलेन्द्रियों का परमसूक्ष्म ब्रह्म में प्रवेश नहीं होता। यह परीक्षक और अपरीक्षक दोनों का प्रत्यक्ष विषय है। वहिर्गत ईश्वर को हृदिस्थ जीव कैसे देख सकेगा क्योंकि शरीर व्यवहित है। अन्तःस्थ जीव का कोई भी व्यवधान नहीं। इस हेतु वहां तो देख सकता है। तो कहता है क्यों नहीं ? न कहने का यही कारण है यह नियम प्रतीत होता है कि बाहर स्थूल इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ यह संचय करता है उस-२ को बाहर के उन इन्द्रियों के द्वारा प्रकाश करता और भीतर का जो विज्ञान है सो भीतर ही प्रकाश करता है क्योंकि सब वादी इस आत्मा को ज्ञानवान स्वीकार करते हैं। अब आश्चर्य देखो कि यह आत्मा ज्ञानवान् होने पर भी "यह सर्प है इस के काटने से मनुष्य मर जाता, इस हेतु इसको हाथ से छूना नहीं चाहिये। यह विषय है इसके पान से मृत्यु होता इस हेतु इसे नहीं पीना चाहिये" इत्यादि वस्तु ज्ञान बाहर से जब तक नहीं लाभ करता है तब तक वह कुछ नहीं जानता है। कुछ आविष्कार नहीं करता हैं। भाव इस का यह है कि जीवात्मा सदा एक रस रहता न यह बालक, न युवा, न वृद्ध होता और न यह घटता न बढ़ता न मोटाता न दुर्बल होता। जो कुछ है उसी रूप से सदा बना रहता है यह शास्त्रों का सिद्धान्त है। अब एक अत्यन्त छोटे बालक के निकट विषधर सर्प रक्खो। इसको देखकर किञ्चित् भी भय नहीं होगा, उसको हाथ से पकड़ने की चेष्टा करेगा इस बच्चे के भीतर जो आत्मा है वह तो सब कुछ जान रहा है और उसी आत्मा की चेष्टा से शरीर चेष्टित होता है। तो इस अवस्था में वह बालक उस विषधर सर्प को पकड़ने के लिये

क्यों चेष्टा करता और भय क्यों नहीं खाता ? यदि कहो कि वह अन्तःस्थ आत्मा सर्प के गुण अवगुण को भूला हुआ है इस हेतु पकड़ता है तो यह कथन सुन्दर नहीं। आत्मा ज्ञानी है यह प्रथम ही स्वीकार हो चुका है। अथवा जिस वस्तु को हम सर्वदा देखा करते हैं उसको नहीं भूल सकते विशेष वस्तु का विस्मरण होता सामान्य का नहीं। अब इस नियम पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो कोई योनि नहीं है जहां सर्प का दर्शन न होता हो। यदि यह कहो कि मनुष्यातिरिक्त योनि में सर्पादि का बोध नहीं प्रथम तो इस में कोई प्रमाण नहीं। दूसरा यदि "**दुर्जन संतोष**" न्याय से मान भी लेवें तथापि सब आत्मा अन्य योनि से ही मनुष्यशरीर में नहीं आता। तब जो जीवात्मा एक मनुष्य शरीर से दूसरे मनुष्य शरीर में आया है उसको तो स्मरण रहना चाहिये सो कहीं नहीं देखा जाता, यदि कहो कि भूल जाता है तो यह कथन पूर्वोक्त नियम से उचित नहीं क्योंकि विशेष को भूलता है सामान्य को नहीं। अर्थात् जैसे किसी ने युवावस्था में कलकत्ता वा मुम्बई को देखा तब से बहुत वर्ष व्यतीत हो गये पुनः कलकत्ता नहीं गया। कलकत्ते के आकार आदि को वह कदापि नहीं भूलेगा। उसकी आंख के सामने स्मरण करते ही कलकत्ते का आकार आजावेगा। यह बात कदाचित् भूल जायगी कि मैंने अमुक पुरुष से क्या बातें की थीं उन्होंने मुझे क्या-२ भोजन करवाया था। भोजन की सामग्री के नाम न स्मरण हों। ऐसी-२ बातें भूल सकती हैं परन्तु सामान्य विषय का विस्मरण नहीं हो सकता।

यदि कहो कि अत्यन्त बाल्यावस्था की सामान्य बात भी तो विस्मृत होजाती, इसका उत्तर मेरे सिद्धान्त में तो बहुत सरल है परन्तु तुम्हारे मत में इसका उत्तर होना अशक्य है। अभी मैं लिख चुका हूं कि अभ्यन्तर से जिसको आत्मा देखता सुनता है उसका बोध अभ्यन्तर ही में रहता कदापि भी बाहर नहीं होता। बाल्यावस्था में बाह्य इन्द्रिय बहुत दुर्बल और विषय ग्रहण में अपटु रहता। इस हेतु मानो, बाल्यावस्था में बाहर से कुछ देखा सुना ही नहीं। पुनः स्मरण क्या होवे। बाल्यावस्था के अनन्तर इन्द्रिय विषय ग्रहण में बाहर से बलिष्ठ और पटु होता जाता है। इस हेतु इस अवस्था से सामान्य वस्तु की विस्मृति नहीं होती। इस प्रकार मेरे मन्तव्य में संगति होती है। तुम्हारे सिद्धान्त में कदापि भी संगति नहीं। तुम विचारो जब आत्मा को एकरस निर्विकार और चेतन मानते हो तो अति बाल्यावस्था में सर्प से क्यों नहीं डरता ! बाल्यावस्था में भी सर्पज्ञान होना चाहिये। सो नहीं देखते। अतः अनुमान होता है कि अभ्यन्तर ज्ञान केवल अभ्यन्तर के लिये, बाह्य ज्ञान

बाहर के लिये है। यह आत्मतत्त्व अत्यन्त कठिन विषय है। इसको अब अधिक न बढ़ावें। प्रकृत विषय का अनुसरण करें।

देखो, शङ्कर सिद्धान्त देखने से मालूम होगा कि सुषुप्ति अवस्था में यह आत्मा सर्वथा ईश्वर से मिलता है। शङ्कराचार्य ने पद-पद पर वर्णन किया है और इन श्रुतियों को प्रमाण में देते हैं:-

"यत्रैतत्पुरुषः स्वपितिनाम, सदा सोम्य सता सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति। इत्यादि।

[छा० उ० ।९।८। १॥]

इस सब से भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जीवात्मा को ईश्वर का दर्शन साक्षात् सब दिन होता है। अतः प्रतिबन्धक के अभाव से अन्तःकरण में दर्शन होता इस में सन्देह नहीं, यह सर्व आस्तिक सिद्धान्त है।

एवंसति सर्वव्यापकत्वाच ब्रह्मणः स्पर्शनमपि प्रतिक्षणं भवतीत्यपि अभ्युपैष्यस्येव। दर्शनस्पर्शनयो रभ्युपगम्यमान- योर्भाषण मपि स्वीकार्यमेव। हेतुदर्शनात्। उभौ चेतनौ सम्मिलितौ कथन्न परस्परं भाषेयाताम्। यद्यपि मनुष्यवन्नेश्वरस्य भाषणम्। आम्नायानां तथैवोपदेशात्। तथापि विलक्षणमनिवचनीयञ्च तत् स्वीकार्यमेव बाधकाभावात्। एतेन दर्शनं स्पर्शन भाषणं सहनिवासश्चेत्यपि सर्व सिध्यति। इदानीमेतन्मीमांसनीयम्। दर्शनाद्युपलब्धावपि कथन्न जीवात्मनः कृतकृत्यता ?। एष तु मम प्रश्नः। भवतु नवैव प्रश्नः। श्रृणु एषा सर्वा वितण्डाकथा। तव भक्तिकथा तु सर्वथा वितण्डैव। यदि नाम जपमात्रेण केवलया शुश्रूषया वा स प्रसीदेत्। तर्हि मुधा मानवी सृष्टिः। तार्हि स इदं कुर्यात्। महतीं सुविस्तीर्णा माद्यन्तपारविहीनां सर्वसुखोपेताम् आत्मसदृशी मेकां सृष्टिं रचयेत्। तत्र न मृत्युर्न रोगो न जरा नाशिशिषा न पिपासा नेर्ष्या न द्वेषो न कलहो जनयितव्यः। किम्बहुना न किमप्यानिष्टं विघ्नोत्पादकं सृजेत्। तत्र मनुष्यसदृशान् असंख्येयान् जीवान् सर्वगुणसम्पन्नान् स्थापयित्वाऽऽज्ञापयेत्। जीवाः ! सर्वे यूयं ममैव नाम जपत, ममैव शुश्रूषा यत्नेन कार्य्या।

और सर्वव्यापक होने से सब जीवों के साथ ब्रह्म का प्रतिक्षण स्पर्श होता है। यह तो आप स्वीकार ही करेंगे। जब दर्शन, स्पर्शन स्वीकार है तब भाषण अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि इसमें हेतु भी देखते हैं दोनों ही चेतन सम्मिलित होने पर क्यों नहीं परस्पर संभाषण करेंगे। यद्यपि मनुष्यवत् ईश्वर का भाषण न हो क्योंकि वेदों का वैसा ही उपदेश है। तथापि विलक्षण अनिर्वचनीय भाषण तो स्वीकर्त्तव्य ही है क्योंकि इसमें कोई बाधक नहीं देखते। इससे ईश्वर का दर्शन, स्पर्शन, भाषण, सहनिवास इत्यादि सब ही

सिद्ध होता है। यहां अब यह विचारणीय है कि दर्शनादि की प्राप्ति होने पर भी जीवात्मा की कृतकृत्यता क्यों नहीं ?। यह तो मेरा ही प्रश्न है। अच्छा तुम्हारा ही प्रश्न रहे। सुनो- यह सब वितण्डाकथा है। तुम्हारी भक्ति की कथा तो सर्वथा वितण्डा ही है। देखो, यदि केवल नाम जपने से वा शुश्रूषा से वह ईश्वर प्रसन्न होवे तो मनुष्य-सृष्टि करना ही व्यर्थ था। तब इसको ऐसा करना था एक बहुत बड़ी, सुविस्तीर्ण, आद्यन्तपारविहीन, सर्वसुखों से युक्त, बहुत क्या कहें अपने समान सृष्टि बनावे वहां न मृत्यु, न रोग, न जरावस्था, न भोजनेच्छा, न पिपासा, न ईर्ष्या, न द्वेष, न कलह, न कोई विघ्नोपादक अनिष्ट वस्तु बनावे। मनुष्य समान सर्वगुणसम्पन्न असंख्य जीवों को यहां स्थापित कर आज्ञा देवे। हे जीवो ! तुम सब मेरा ही नाम जपो, मेरी ही शुश्रूषा यत्न पूर्वक करो।

बुद्धिरपि तादृश्येव दातव्या येन न स्वनियोगात् विरमेयुः। यतस्तस्यैवाधीनं सर्वमस्ति। इत्थमासनान्यध्यासीनान् जनान् स्वनाम जापयन् शुश्रूषयंश्च स प्रसीदतु। किं मानवसृष्ट्यानया क्षुत्पिपासादिसंयुक्तया, ईदृशीं सृष्टिमकृत्वा क्षुत्पिपासाज्ञानादिमतीं कृत्वा च किं फलं पश्यतीश्वरः। एतेन यां त्वं भक्ति मन्यसे यञ्च नाम जपं याञ्च शुश्रूषाम्। तदर्था नेयं सृष्टिर्नेयं-भक्तिर्नेदं शुश्रूषादि। ईश्वरेणास्माकं या प्रदत्ता बुद्धिरास्मशक्तिश्च। तस्याः कोप्यपरोऽभिप्रायः। यावती बुद्धिशक्तिरस्ति अस्या गतिरपि च यावद्व्यापिनी वर्तते तदवधौ कार्य्ये सा नियोक्तव्या। यत्नेन तत्पर्य्यन्तं कार्य्यै साधयित्वा सा सफली-कर्तव्या। यदि तां शक्तिं लब्ध्वा कार्ये न परिणमयसि तर्हि पापीयानसीति कः सन्देहः। यथा धनं स्वस्वेतरलोकोपकाराय वर्तते। याद तद्धनं लब्ध्वा कोऽपि न वर्धयेत्, न च रक्षेत्, न किमपि तेन कुर्यात् प्रत्युत तद्विस्मरेद्वा चौरादिभिरपहारयेद्वा। तर्हि स कथन्न पापीयान् एवमेवेश्वरेण या शक्तिः प्रदत्ता तामरक्षयित्वा विनाशयम। कथन्न तर्हि वयं पापभागिनः। कार्ये शक्तेरविनियोग एव शक्तिविनाशनम्। क्रमशः सा हि शक्तिरविनियुक्ता क्षीयते। बालकादिषु शिक्षातारतम्यदर्शनात्॥

उनको बुद्धि भी वैसी ही देवे जिससे कि वे अपने कार्य से विरत न हों क्योंकि उसीके अधीन सब कुछ है। इस प्रकार आसनों के ऊपर बैठे हुए मनुष्यों से अपना नाम जपवाता और शुश्रूषा करवाता हुआ वह प्रसन्न होवे, इस क्षुत्पिपासादि-संयुक्त मानव-सृष्टि से क्या प्रयोजन ? ईश्वर ईदृश सृष्टि न कर क्षुधा-पिपासा-ज्ञानादिमति सृष्टि कर क्या फल देखता है ? इससे प्रतीत होता है कि जिसको तुम भक्ति जप और शुश्रूषा मानते हो तदर्थ यह सृष्टि नहीं है, न यह भक्ति और न यह शुश्रूषा है। ईश्वर ने जो बुद्धि आत्मशक्ति हम लोगों को

दी है उसका कुछ अन्य अभिप्राय है। जितनी बुद्धि-शक्ति है और इसकी गति भी जहांतक है वहांतक कार्य्य में इसको लगाना चाहिये। यत्न से वहांतक कार्य साध उसको सफल करे। यदि उस शक्ति को पाकर कार्य में नहीं लगाते हो तो तुम बड़े पापी हो इसमें सन्देह ही क्या ? जैसे धन अपने और अपने से इतर मनुष्यों के उपकार के लिये है। यदि कोई अज्ञानी उस धन को न बढ़ावे न रक्षा करे उससे कुछ भी न करे प्रत्युत धन को भूल जाय वा चोर आदिकों से चोरी करवा दे वा उसके आलस्यवश चोरी हो जावे तो वह आदमी क्यों नहीं पापी गिन जायेगा। इसी प्रकार ईश्वर ने जो शक्ति दी है उसकी रक्षा न करके विनाश कर देवें तो हमलोग क्योंकर पाप के भागी न बनेंगे। कार्य में शक्ति को न लगाना ही शक्ति-विनाश है क्योंकि क्रमशः-क्रमशः वह शक्ति अविनियुक्त होजाने से क्षीण होजाती है।

इसकी परीक्षा इस प्रकार कर सकते हो कि जो बालक तीक्ष्ण बुद्धि है उसको कुछ काल तक मत पढ़ाओ और जो मन्दबुद्धि है उसको यत्न से पढ़ाओ यह मन्दबुद्धि कुछ दिन के अनन्तर अच्छी बुद्धिवाला होजायगा धारणाशक्ति बहुत बढ़ जायगी। परन्तु वह तीक्ष्णबुद्धि बालक मन्द हो जायगा, पुनः इसको भी पढ़ाना आरम्भ करो तो कुछ दिन के अनन्तर इसकी बुद्धि पुनः बढ़ती चली जायगी। अभ्यास शक्ति आदि सब गुण बढ़ जायँगे। इतिहास से यह मालूम हुआ है कि एक आध को छोड़कर एक स्थान वा एक देश वा एक द्वीप में प्रायः कुछ दिन तक एकसी बुद्धि रहती है। न्यूनाधिक्य रहती है भी तो बहुत कम। जब इन के ही मध्य में लोकोत्तर बुद्धिवाला मनुष्य उत्पन्न हो अपना सिद्धान्त फैलाता तब पुनः प्रायः सब की बुद्धि तदनुकूल हो जाती, पुनः कोई उससे भी बुद्धिमान् उत्पन्न होता तो इसके अनुकूल लोग चलने लगते हैं। हां ! इतनी बात अवश्य है कि हठ दुराग्रह से भी कोई-२ बात स्थिर रहकर पश्चात् बहुत शक्तिसम्पन्न हो जाती है। यहां भारतवर्ष में इसके अनेक उदाहरण हैं। कुछ दिन ऐसा था कि सतीविधि का प्रायः सब ने अनुमोदन किया परन्तु अब हठी दुराग्रही को छोड़ एक बालक भी इसका अनुमोदन नहीं करता, तान्त्रिक धर्म बड़ी प्रबलता से चला, पुनः उसको दबाकर वैष्णवधर्म ने भी निज शक्ति का प्रभाव सब के हृदयपर जमाया। पूर्वकाल में सुना जाता है कि बौद्ध सम्प्रदाय की अद्भुत शक्ति थी परन्तु वह भी यहां से नष्ट होगई, भारत में इसका नाम तक शेष न रहा। इस प्रकार के सहस्रशः उदाहरण दिखला रहे हैं कि यह बुद्धि बढ़ती घटती रहती है इस हेतु बुद्धि को स्वतन्त्रता से पूर्णप्रयत्नपूर्वक कार्य्य में अवश्य लगावे। यहाँ यह भी जानना चाहिये कि जब-

२ किसी कारण विशेष से बुद्धि की स्वतन्त्रता के ऊपर महान् प्रहार हुआ है तब ही देश में "अन्धगोलाङ्गूलन्याय" की प्रवृत्ति हो ऐसी-२ क्षति पहुंची कि जिसका वर्णन कदापि नहीं हो सकता है। इस हेतु हे मनुष्यो ! अपनी बुद्धि-शक्ति को जहांतक हो शुभ काम में लगाओ। यही ईश्वर की परमभक्ति है क्योंकि ईश्वर के दिये हुए अस्त्रों को यदि तुम मलीन करदोगे वा किसी काम में न लगाओगे तो क्या ईश्वर इससे अप्रसन्न न होगा ?

इदानीं चिन्त्यतामस्मासु कियती कीदृशी च शक्तिरस्ति। एतदर्थानि कृत-कार्याणामाप्ताना-मुदाहरणान्यादेयानि। मनुष्यत्वेन वयं समास्तर्हि यत्तेः कृतं तत्कथन्न करिष्याम इति विचार्य तस्मिन् प्रवर्तितव्यम् इत्थमवश्यमेव त्वमपि कर्तुं शक्ष्यसि। ननु तारतम्यं विद्यत एव। सत्यमेतत्-प्रागेव स्वप्रवृत्तस्त्वयै- वेदं "न मम साध्यमिति" कथं प्रत्यक्षी कृतम्। ननु स्वसेना परिवृतः सम्राड् यत्करोति तत् कुर्वन्न कश्चिद् हालिको दृष्टः। नह्येतदेकस्य कार्यम्। त्वमेकोऽसि। एकध्य दृष्टान्तो ग्रहणीयः। यथैकः कणादः परमाणुविद्यामाविश्चकार। तथा त्वमपि कर्तुं समर्थः। राजदृष्टान्तोऽप्येवं समाधातव्यः। अत्रैतिहासिका आहुः-

अब यह चिन्ता करो कि हम लोगों में कितनी और कैसी शक्ति है इसके लिये कृतकार्य्य मनुष्यों के उदाहरण लेवें और विचारें कि मनुष्यत्वेन हम सब बराबर हैं तब एकने जो काम किया उसको हम क्यों नहीं कर सकेंगे, यह विचार उस कार्य में प्रवृत्त होजाय, अवश्य ही तुम भी इसको कर सकोगे। शङ्का- बुद्धि की तारतम्य देखते हैं। उत्तर- सत्य है। परन्तु अपनी प्रवृत्ति से पूर्व ही तुम को यह कैसे प्रत्यक्ष होगया कि यह कार्य्य मुझ से न होगा। प्रश्न- एक सम्राट् अपनी सेना से परिवृत्त हो जो काम करता है उस-२ काम को करता हुआ अकिञ्चन हल चलाने हारा कदापि नहीं देखा गया। यदि वह हालिक उस सम्राट् के समान मनोरथ करे तो कैसे हो सकता। उत्तर- यह एक का कार्य नहीं। तुम एक ही एक का दृष्टान्त लो। यथा-एक “कणादऋषि ने परमाणु” विद्या का आविष्कार किया वैसा तुम भी कर सकते हो। राजा का दृष्टान्त जो तुमने दिया है उसका भी इस प्रकार समाधान होगा।

अत्रैतिहासिका आहुः- ज्ञायते पुरा किल न कोऽपि राजाऽभूत्। गच्छत्सु कालेषु बलिष्ठो न्यूनान् बाधितुमारेभे। शनैः-शनैः स्वशक्ति च वर्धयामास। बलाद् बहून् न्यूनवलान् स्वायत्तीकृत्य राज्यं स्थापयामास। पुरा नासीदीदृशं विस्तीर्णराज्यम्। यद्वा, चौरपाठच्च-रादि-दुष्टजनैरुपद्रुताः स्वस्वरक्षणे -ऽसमर्थाः मजा एकं नायकं स्थिरीकृत्य तदधीनत्वं स्वीकृत्य रक्षार्थ राज्यवद् व्यवस्थां प्रथमं कृतवत्यः शनैः शनैरस्या ईडगाकारः संवृत्तः। अतो नैकस्येदं कार्यं न चैकवंश्यस्य वा। राज्यव्यवस्था समयाधीना परिवर्त्तत। विद्या त्वन्या कथा

सैकाधीना। पश्चाच्छनैः शनैः सापि वृद्धि प्राप्नोति। अतो महतां दृष्टान्तेन कार्यें प्रवर्तितंव्यमेव। भवन्तु तावत् पदार्थानामानन्त्यादनन्ता विद्याः "सर्वाः विद्या जानीहि सर्वा वा अविदिता विद्याः प्रकाशय" इति क उपदिशति। चेष्टा कर्त्तव्येत्येतावानुपदेशः।

इतिहास से जाना जाता है कि पूर्व में कोई राजा नहीं था। कुछ समय बीतने पर बलिष्ठ पुरुष न्यून पुरुषों को बाधा देने लगे। धीरे-२ उसने निज शक्ति को बढ़ाना आरम्भ किया। बलात् न्यून पुरुषों को अपने वश में करके राज्य स्थापित किया पूर्व समय में ऐसा विस्तीर्ण राज्य नहीं था। अथवा जब चोर डाकू आदि दुष्ट जनों से प्रजाएं उपद्रित होने लगीं और अपनी रक्षा करने में असमर्थ हुई तब एक नायक को स्थिर कर उसकी अधीनता स्वीकार कर रक्षा के लिये राज्य के समान प्रथम व्यवस्था बान्धी। धीरे-२ राज्य, का आज ऐसा आकार होगया है। इस हेतु यह एक का कार्य्य नहीं और न एक वंशस्थ पुरुष का ही, किन्तु अनेक वंशपरम्परा होते-२ आज इसकी यह आकृति है। राज्यव्यवथा समयाधीन परिवर्तित होती रहती है। विद्या तो अन्य कथा है। वह एक के अधीन है। पश्चात् धीरे-२ वह भी वृद्धि को प्राप्त होती, इसमें सन्देह नहीं। इस हेतु महान् पुरुषों के दृष्टान्त से कार्य में प्रवृत्ति करनी चाहिये। इस हेतु पदार्थों के अनन्त होने से विद्याएं भी अनन्त होवें। इसकी कोई चिन्ता नहीं। सब ही विद्याएं जानो। अथवा सब ही अविदित विद्याओं को प्रकाशित करो" यह कौन उपदेश देता है किन्तु चेष्टा करनी चाहिये इतना ही उपदेश दिया जाता है,

नतु नववेदान्तिभिरिव शुष्ककाष्ठपशुभिर्वा जड़ैर्वा भाव्यम्। अहो नवीनवेदान्तिनामनिर्वचनीयं मौढ़्यम्। तैः कर्मत्यागोऽप्युपदिश्यते। किं तैस्त्यक्तम् ? एतैः पशुमूर्खैरज्ञातविद्यातत्त्वैरन्धीकृता भारतभूमिः। आसतां तावदेतेषामलसानामज्ञानिनाञ्च कथाः प्रकृतमनुसरामः।

वेदेषु ब्राह्मणेषूपनिषत्सु च समस्ति कापीदृशी शिक्षा ? येदानीमिव केवलं नामजापं त्वदीयां भक्तिञ्च दर्शयेत् । नह्येतत्सदृशं कापि तत्त्वपार दृश्वभिर्ऋ- षिभिराचरितम्। चातुराश्रम्ये कर्म्म स्वाध्याययवचनपरिपाटी समवर्तततरामिति प्रागवोचाम। अस्माकं प्राञ्च आचार्य्याः पदार्थविज्ञानेनैव निःश्रेयसं मन्यन्ते स्म।

तद्यथा- "धर्म-विशेष-प्रमुताद् द्रव्यगुण कर्म-सामान्यविशेष-समवायानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसम् ॥ ४ ॥ पृथिव्यापस्तेजो- वायुराकाशं-कालो-दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥ ५॥ रूपरसगन्धस्पर्शाः सङ्ख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोग-विभागौ-

परत्वापरत्वे-बुद्धिः सुख-दुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणा ॥ ६ ॥ उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमन मिति कर्माणि" ॥ ७ ॥ वैशेषिक द० अ० १। आ० १ ॥

उपदेश यहां यह दिया जाता है कि नवीन वेदान्तियों के समान शुष्ककाष्ठ वा पशु वा जड़ मत होवो। आश्चर्य ! नवीन वेदान्तियों का मौढ्य भी अनिर्वचनीय है। वे नवीन वेदान्ती सर्व- कर्म त्याग के लिये उपदेश देते हैं। उन्होंने स्वयं क्या त्यागा ! ये पशु और मूर्ख हैं जिन्होंने विद्याओं के तत्त्वों को न जाना इस भारतवर्ष को अन्ध बना दिया है। इन आलसी अज्ञानियों की कथाओं को यहां ही रहने दो हम लोग अपने विषय का अनुसरण करें।
वेदों में, ब्राह्मणों में, उपनिषदों में कोई भी ऐसी शिक्षा है ? जो केवल नामजप और तुम्हारी भक्ति को बतलावे। ऐसे-ऐसे काय्यों को कहीं भी तत्त्वपारद्रष्टा ऋषियों ने कभी नहीं किया है। चारों आश्रमों में कर्म्म, स्वाध्याय और प्रवचन की ही अधिक परिपाटी थी इसको प्रथम हम कह चुके हैं, ज्ञानोपार्जन ही परमभक्ति मानी जाती थी भृगु आदिक के उदाहरण से विदित होता है। यह भी देखो:-

हम लोगों के प्राचीन आचार्य्य पदार्थों के विज्ञान से ही निःश्रेयस मानते थे। यथा-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये छः पदार्थ वैशेषिक के हैं। इनहीं पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस होता है। यह महर्षि कणाद कहते हैं। पृथिवी अप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन नव द्रव्य हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये गण हैं। उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन ये पांच कर्म हैं।

इत्यादि सूत्रजातं सूत्रयन्तो भगवन्तः कणादाः पृथिव्यादिपदार्थसमुदायतत्त्वविज्ञानादेव निःश्रेयसपथमुपदिशन्ति । 6

एवमेव— "प्रमाणप्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-तर्क-निर्णयवाद-जल्पवितण्डा हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥ १ ॥ प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ॥ ३ ॥ आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः-प्रवृत्तिदोष-प्रत्याभाव। फलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥ ६ ॥ पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ॥ १३ ॥ गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः" इत्यादिभिः सूत्रैर्भगवान् गौतमोऽपि पदार्थज्ञानमेवा- पवर्गसाधनमुपदिशति।

इत्यादि सूत्रों को रचते हुए भगवान् कणाद महर्षि पृथिवी आदि पदार्थ-समुदाय के विज्ञान से ही मुक्ति होती है यह उपदेश देते हैं। यदि केवल नाम जपने से वा तुम्हारी भक्ति

से ही कल्याण होता तो क्या कणाद ऋषि लोकशत्रु थे कि जिन्होंने इस महान् ग्रन्थ को बनाकर पढ़ने का भार सबों पर डाला है।

इसी प्रकार- प्रमाण १ प्रमेय २ संशय ३ प्रयोजन ४ दृष्टान्त ५ सिद्धान्त ६ अवयव ७ तर्क ८ निर्णय ९ वाद १० जल्प ११ वितण्डा १२ हेत्वाभास १३ छल १४ जाति १५ निग्रहस्थान १६ इन षोडश पदार्थों के ज्ञान से अपवर्ग की प्राप्ति होती हैं॥ १॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण हैं॥ ३॥ आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग ये प्रमेय हैं॥ ९ ॥ पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश ये पांच भूत हैं॥ १३॥ गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पृथिवी आदिक के गुण हैं। इत्यादि सूत्रों से भगवान् गौतम भी पदार्थ ज्ञान को ही मोक्षसाधन कहते हैं।

सम्प्रति कापिलं सांख्यमधीष्व। प्रकृति-पुरुष-विज्ञानमन्तरा न तत्रापवर्गस्याशालेशोपि क्वापि ध्वनितः सम्पूर्णं दृश्यमदृश्यं सूर्यादिसहितं ब्रह्माण्डपदवाच्यं यत्किमपि वर्तते। तत्सर्वं प्रकृतिकार्यम्। अत्र कार्य्यावबोधेनैव प्रकृतिबोधः। तस्मिन् सति प्रकृतिस्तं पुरुषं जहाति। ततो मुक्तिः। तत्रेमाः कारिका भवन्ति।

दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः। तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २॥ रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्। पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य निवर्तते प्रकृतिः॥ ५९॥ प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति। या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥ ६१॥ रूपैःसप्तभिरेव बघ्नात्यात्मान मात्मना प्रकृतिः। सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येक रूपेण॥ ६३॥

अब कापिल सांख्य शास्त्र को देखो। प्रकृति और पुरुष के विज्ञान के विना उस शास्त्र में कहीं भी मुक्ति का लेश ध्वनित नहीं हुआ है। सम्पूर्ण दृश्य, अदृश्य, सूर्यादि सहित, ब्रह्माण्डपदवाच्य जो कुछ है वह सब ही प्रधान का कार्य है। कार्य के बोध से ही प्रकृति का बोध कहा गया है। जब ऐसा बोध उत्पन्न होता है तब प्रकृतिरूपा स्त्री पुरुष को छोड़ देती है तब मुक्ति होती है। इस विषय में इन कारिकाओं को देखो-

(दृष्टमद्-आनुश्रविकः) दृष्ट उपायों के समान ही धर्म्म शास्त्रोपाय भी हैं (हि) क्योंकि (अविशुद्धि०) वे धर्मशास्त्रोपाय भी अशुद्ध, क्षयशील और अतिशय युक्त है, इस हेतु इसके विपरीत (व्यक्त) प्रकृति का कार्य=यह सम्पूर्ण जगत् (अव्यक्त) स्वयं प्रकृति और (ज्ञ) आत्मा इन तीनों का विज्ञान ही मुक्तिसाधक है॥ १॥ (रङ्गस्य०) जैसे नर्तकी नृत्य देखनेहारों को सम्पूर्ण लीला दिखला कर नृत्य से निवृत्त हो जाती है वैसे ही यह प्रकृति

जीवात्मा को अपनी आकृति दिखला कर लौट जाती है ॥ ५६ ॥ (प्रकृतेः ०) मैं समझता हूंकि प्रकृति से बढ़कर कोई भी सुकुमार नहीं है क्योंकि जब प्रकृति एकवार भी यह देखलेती है कि मुझ को इस पुरुष ने देख लिया तब पुनः उस पुरुष के सामने कदापि भी नहीं होती ॥ ६१ ॥ वह प्रकृति सात रूपों से जीवात्मा को बांधती है और एक रूप से वही इसको छुड़ाती है ॥ ६३ ॥

विचारय ! नहि मानुषीव प्रकृतिःकापियुवती सुन्दरी मनोरमास्ति। या स्वेन सौन्दर्येण कमपि रक्तं बध्नीयात्, न चेयं कापि राजवधूरसूर्य्यपश्यास्ति या परेण पुरुषेण दृष्टास्मीति तस्मात्त्रपेत। पुनश्चात्मानं न दर्शयेत् कदापि। किन्तु जीवात्मानं वर्जयित्वा सम्पूर्णेयं सृष्टिरेव प्रकृतिः। यथा-

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गरणः ॥ ६१ ॥ सांख्य० अध्याय १ ॥

इदानीमनुमानुं शक्नोषि व्यक्ताव्यक्तज्ञ-विज्ञानान्मुक्तिमुपदिशता माचार्य्याणां कोवाऽऽशयः। व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यस्य विज्ञाने कियन्ति वर्षाणि व्यत्येष्यन्ति।

अब यहां विचार करो कि प्रकृति, मानुषी के सामान युवती, सुन्दरी, मनोरमा स्त्री तो नहीं है, जो स्वकीय सौन्दर्य से किसी रक्त पुरुष को बान्धेगी, न यह कोई राजा की स्त्री के समान असूर्यपश्या (जो सूर्य को भी नहीं देखती है) स्त्री है जो परपुरुष से मैं देखी गई हूं इस हेतु उससे बराबर लजाती रहे, पुनः अपने शरीर को कदापि नहीं दिखलावे तो प्रकृति क्या है ?। देखो जीवात्मा को छोड़ यह सम्पूर्ण सृष्टि ही प्रकृति है, क्योंकि सूत्र में कहा गया है कि "सत्त्व, रज, तम इन तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति से महान्, महान् से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा और कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय। तन्मात्रा से पञ्चस्थूलभूत होते हैं। इससे महान् से लेकर पृथिवी पर्यन्त प्रकृति के कार्य्य हैं। इत्यादि शास्त्रों से सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाम ही प्रकृति है। इससे कोई भिन्न प्रकृति नहीं। अब आप अनुमान कर सकते हैं कि व्यक्त अव्यक्त और पुरुष के विज्ञान से मुक्ति होती है यह उपदेश करते हुए आचार्य का क्या आशय हो सकता है ? प्रकृति कार्य्य जो व्यक्त है उसके विज्ञान निमित्त कितने वर्ष व्यतीत होवेंगे।

तथापि किं तस्याशेषस्य निःशेषतया सम्यग्ज्ञानं कदापि भवितुमर्हति। कार्य्यजातस्यानन्त्यात्। आचार्य्यास्तु तज्ज्ञानान्मुक्तिं शासति। एतेन प्रकृतिविज्ञाने रुचिमन्तो

जना भवन्त्विति प्ररोचनायैव शास्त्रं प्रणीतम्।

योगशास्त्रन्तु सांख्यमेवानुकरोति । यावदायुषं यज्ञानुष्ठानं शास्ति मीमांसा। तच्चाशेषाणां वेदानां शतपथादि-ब्राह्मणानामङ्गानामुपाङ्गानाञ्चाध्ययनाद् विना न संभवति। वेदादयस्तु ईश्वरीय-विभूत्य-परनाम्नीं प्रकृतिमेव पदे-पदे स्तुवन्ति। अयमग्निः। एष सूर्यः। अयं वायुः। एते ग्रहाः। एत उपग्रहाः। इत्यादि नामनिर्देशेन। एवं यज्ञानुष्ठानच्छलेन विविधाः प्रकृतिविकारा एव अध्याप्यन्ते। ब्रह्ममीमांसा तु सर्वासामुपनिषदां समन्वयकरणे स्वकीयामाकृतिमियतीं विस्तीर्णां करोति यां परिरब्धुं सहस्रेषु लक्षेषु वा कश्चिदेवाईः। यदि नाम जपादिभिरेव ब्रह्म प्राप्तुं शक्यं तर्हि मुधैव कृष्णद्वैपायनश्चतुरध्यायीं प्रणिनाय। अन्येच स्वस्वमीदृशं शास्त्रम्।

तथापि क्या सम्पूर्ण व्यक्त का सम्पूर्णतया सम्यक् ज्ञान कदापि हो सकता है ? क्योंकि ये कार्य्यसमूह अनन्त हैं, परन्तु आचार्य्य इसके ज्ञान से ही मुक्ति कहते हैं, इससे विस्पष्ट है कि प्रकृति के विज्ञान में मनुष्य रुचिमान् होवे इसी प्ररोचनार्थ शास्त्र रचा है।

योगशास्त्र सांख्य का ही अनुकरण करता है। मीमांसा सम्पूर्ण आयु यज्ञानुष्ठान की ही शिक्षा देती है। वह अनुष्ठान सब वेदों के, सब ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के तथा अङ्ग उपाङ्गों के अध्ययन विना कदापि नहीं हो सकता। वेदादि सब शास्त्र ईश्वरीय विभूति की दूसरी नामवाली प्रकृति की ही पद-पद में स्तुति करती है। यह अग्नि, यह सूर्य, यह वायु, यह ग्रह, ये उपग्रह हैं। इस प्रकार यज्ञानुष्ठान के छल से विविधप्रकृति-विकार ही पढ़ाये जाते हैं। ब्रह्ममीमांसा (वेदान्त) तो सब उपनिषदों के समन्वय करने के निमित्त अपनी आकृति को इतनी विस्तीर्ण करती है कि जिसको पाने के लिये सहस्रों लाखों में कोई एक ही समर्थ हो सकता है, यदि नाम के जपादि से ब्रह्म-प्राप्ति हो सकती थी तो व्यर्थ ही कृष्ण द्वैपायन आदिक आचार्य्यों ने ऐसा-२ शास्त्र रचा।

अत्र तु न सन्देहस्तत्त्वविज्ञानायैव यमादयो धर्माः सेव्यत्वेनोपदिष्ठाः। नहि तत्त्वविज्ञाननिरपेक्षाः क्वचिदपि यमादयः साध्यत्वेनोक्ताः। अतो ब्रूम-ईश्वर-विभूत्यध्ययनायैव मानवी सृष्टिरिति। यथा-यथा मनुष्येषु तत्त्वविज्ञानं वर्धिष्यते तथा-तथा मिथ्याज्ञाननिवृत्तेः सुखमपि प्रसरिष्यति। तदैकान्तमत्यन्तञ्चापवर्गं लप्स्यन्ते मनुष्या इत्यत्र किमिहास्ति बहु वक्तव्यम्। एतावदेव पर्याप्तं यत् "ज्ञानान्मुक्तिः" इत्यस्माकमाचार्याणां सिद्धान्तो भूयो-भूयो मीमांसनीयः।

पुनः शङ्कते- योऽयमीश्वरो द्यावापृथिव्यौ जनयन् मातापितृशतेभ्योऽप्यधिकतर-वात्सल्यशाली निखिलप्रयोजनविद् बुद्धेरपिबुद्धिप्रदोस्ति। स किमुद्दिश्येमां विलक्षणां मानवीं सृष्टिं विदधाति। अस्ति काचिदीदृशी मनुष्येषु शक्तिर्यया परमगहनं वादिप्रतिवाद्युत्थापितविप्रतिपत्तिभयङ्करमपि यदज्ञानेन खिलीकृताखिलमानुषमयत्नम् अतएवोत्तरोत्तरकल्याणाय परः सहस्रैरप्यायासैरवश्यापेक्षितबोधं पर्य्यनुयोगमवधारयितुं पारयाम अस्तीति समाधानम्।

इसमें सन्देह नहीं कि तत्त्वविज्ञान के लिये ही यम आदि धर्म सेव्यत्वेन उपदिष्ट हुए हैं। तत्त्वविज्ञान रहित यमादिक की साधना कहीं नहीं कही हुई है। इस हेतु हम कहते हैं कि ईश्वर की विभूति के अध्ययन के लिये मानवी सृष्टि हुई है। जैसे-२ मनुष्यों में तत्त्वज्ञान बढ़ेगा वैसे-२ मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होगी और उससे सुख भी फैलेगा। तब ही एकान्त और अत्यन्त अपवर्ग (मुक्ति) को मनुष्य पावेंगे इसमें बहुत क्या कहना है। इतना ही कहना बहुत है कि- "**ज्ञानान्मुक्तिः**" जो यह हम लोगों के आचार्यों का सिद्धान्त है उसको वारंवार मनन करो।

शङ्का— जो यह ईश्वर, द्युलोक और पृथिवी को उत्पन्न करता हुआ, शतशः माता पिताओं से भी अधिकतर वात्सल्यशाली, समस्त प्रयोजनों को जाननेहारा बुद्धि को भी सुबुद्धिप्रद है। वह किस उद्देश से इस विलक्षण मानव सृष्टि को करता है ? क्या मनुष्यों में कोई ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा इस परमगहन प्रश्न को निश्चित करने में हम लोग समर्थ होवें क्योंकि यह प्रश्न वादी और प्रतिवादी दोनों के उठाए हुए विविध सन्देहों से अति भयङ्कर हो रहा है। भयङ्कर होने पर भी जिसके न जानने से मनुष्यों के अखिल प्रयत्न व्यर्थीभूत होगये हैं। इस हेतु उत्तरोत्तर कल्याण के वास्ते हजारों परिश्रमों से भी जिसका बोध अवश्य ही अपेक्षित हैं इसके उत्तर में कहा जाता है कि है। अर्थात् मनुष्य में वह शक्ति है।

यदि प्रतिपक्षविहीनाः प्रेक्षावन्तोजनाः परीक्षका ब्रह्मणि मनः स माधाय तन्महिमसु आब्रह्मस्तम्भोच्चावचेषु पदार्थेषु गभीरां सात्त्विक विज्ञानदृष्टिं प्रक्षिपन्त एतदर्थं कालं क्षपयेयुस्तर्हि किन्नामदुष्करं विचक्षणानां पञ्चजनानाम्। दृश्यते किञ्चिदुद्बोधोदयाद् मानवार्भकः खलु स्वपरितऊर्ध्वमधश्चः स्थितान् नूतनान्-नूतनान् पार्थिवान् प्राच्या मुद्यन्तं भास्करं, नक्तं, गगनस्थं, चन्द्रमण्डलं, नक्षत्रचक्रं, द्युलोकस्थान, उत समीषतरचारिणः सारमेयवायसादीन् पदार्थान् दर्श-दर्श किमिदं-किमिदं मातर्भण मे सर्वमिति पृच्छन् जिज्ञासावान हरहो दृश्यते। दृष्ट्वा चेमान् चकितो भवति तत्तत्पदार्थज्ञानाय

लालसावानुत्सुकतरश्च जायते। रात्रिन्दिवं बालचरितानि पश्य।तेन ज्ञास्यसि-इयं मानवी सृष्टिर्बलवत्तरविजिज्ञासावती वर्तत इति।

यदि प्रतिपक्ष विहान प्रेक्षावान् जन परीक्षक होके ब्रह्म में मन समाहित कर उसकी महिमा जो ब्राह्मण से लेकर स्तम्भ (घास) पर्य्यन्त ऊंच नीच पदार्थ हैं उनपर गम्भीर सात्त्विक विज्ञान दृष्टि को फेंक देते हुए इसके लिये काल को बितावें तो विचक्षण मनुष्यों के लिये क्या दुष्कर है। देखते हैं जब हीं किञ्चित् बोध का उदय होता है तब से हीं मनुष्यबालक अपने चारों तरफ ऊपर और नीचे स्थित क्या नवीन पृथिवीस्थ पदार्थ, क्या पूर्व दिशा में उगता हुआ सूर्य्य, क्या रात्रि में गगनस्थ चन्द्र-मण्डल, नक्षत्र समूह द्युलोकस्थ पदार्थों को, क्या अति समीप में विचरण करनेहारे कुत्ते, कौवे आदि पदार्थों को देख-२ कर यह क्या है, यह क्या है, मां मुझको सब कहो, इस प्रकार पूछता हुआ दिन-२ जिज्ञासावान् दीख पड़ता है। इन सबों को देख-२ कर बड़ा ही चकित होता है। उस-२ पदार्थ को जानने को लालसावान् और अति उत्सुक होता। आप लोग रात दिन बालचरितों को देखो उससे आप जानोगे कि यह मानवी सृष्टि बड़ी ही विजिज्ञासावती है।

विजिज्ञासाखलु पदार्थानां विशेषतया ज्ञातुमिच्छा। दृश्यते च तेन विजिज्ञासाबलेन स्वौत्सुक्य निवृत्तये मनुष्यैः यथायथं विदितान्यपि भूरीणि गूढानि पदार्थतत्त्वानि। एतेन विजिज्ञासार्थवतीति न सन्देहः। अतोऽनुमन्यामहे किमपि विज्ञातुमेवेयं विशेषेण मानुषी सृष्टिः। जिज्ञासायामेव प्रवर्त्तयितुं मानवजातिः सृष्टा परमात्मनेतिसिद्ध्यति अत्र ईश्वरीयवाक्यानां तज्ज्ञानां महर्षीणां प्रवृत्तेश्च प्रामाण्यम्। यदुभयमन्तरा केवलैः शुष्कतर्कवादैर्न किमप्यस्माभिः प्रतिष्ठापयितुं शक्यम्। तत्र-तत्र वेदेषु तु "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति" इत्यादिषु स्ववचनेषु ज्ञानार्थक विद्यादि धातुप्रयोगैः पदार्थानां वेद्यत्वं मनुष्याणां वेत्तृत्वञ्च सम्यगनुशास्ति भगवान् कारुणिकः। ऋषयोऽपि स्वस्वप्रवृत्या "य एवं वेद य एवं वेदेत्यादीन् भूरि-भूरि-प्रयोगांश्च विदधतस्तमेवार्थमनूद्य भगवन्निदेशं प्रमाणीकुर्वन्ति। तद्यथा—

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः। कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्। ऋ० १। १६४। १६।

पदार्थों को विशेष पूर्वक जानने की इच्छा का नाम ही विजिज्ञासा है। इस जाज्वल्यमाना और महती इच्छा से यह अधिकतर युक्त है और यह भी देखते हैं कि उस जिज्ञासा के बल से अपनी उत्सुकता की निवृत्ति के हेतु मनुष्यों ने जिस किसी प्रकार से बहुत कुछ पदार्थों

के गूढ़ तत्त्वों को जान भी लिया है। इससे विजिज्ञासा अर्थवती है यह सिद्ध होता है, अर्थात् जिज्ञासा व्यर्थ नहीं है। इससे हम अनुमान करते हैं कि कुछ न कुछ जानने के लिये ही विशेष कर मनुष्यसृष्टि है। इससे सिद्ध होता है कि जिज्ञासा में प्रवृत्त करवाने के लिये ही ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की है यहां प्रथम ईश्वरीय वाक्यों का और तत्पश्चात् उनके जाननेहारे महर्षियों की प्रवृत्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जिन दोनों के विना केवल शुष्क तर्कवादों से कुछ भी हम लोग प्रतिष्ठापित नहीं कर सकते। वहां-२ वेदों में तो ज्ञानार्थक "**विद**" आदि धातुओं के प्रयोगों से कारुणिक भगवान् अच्छे प्रकार सिखलाता है कि पदार्थ अवश्य वेद्य अर्थात् जानने योग्य है और मनुष्य वेत्ता अर्थात् जाननेहारे हैं। ऋषि लोग भी अपनी-अपनी प्रवृत्ति से और अपने ग्रन्थों में पद-२ पर "**य एवं वेद, य एवं वेद**" जो ऐसा जानता है जो ऐसा जानता है, इस प्रकार के बहुत-२ प्रयोगों को करते हुए उसी वैदिक अर्थों का अनुवाद कर भगवान् की आज्ञा को प्रामाणिक करते हैं। अब प्रथम वेदों के प्रमाण कहते हैं।

"स्त्रियः" इस मन्त्र में "ज्ञा" धातु और। "य ई चकार" "प्रतद्वोचेद्"। "न तं विदाथ"। "यो विद्यात्"। "पुण्डरीकम्" "अकामः"। "यत्र देवाः"। इत्यादिक मन्त्रों में "विद्" धातु के प्रयोग विद्यमान हैं। इत्यादि अनेक स्ववचनों में स्वयं भगवान् भूतभावन परमपिता "विद" धातु और तदर्थक धातुओं के प्रयोगों से परममाननीय और शाश्वती इच्छा का प्रकाश करते हैं कि पदार्थ विज्ञान के लिये ही मनुष्यों को मैं रचता हूं। यदि यह आशय नहीं होता है तो जानने से मनुष्यों को कल्याण होगा ऐसी शिक्षा वेदों में नहीं देते। इससे मालूम होता है कि जानने के लिये ही मनुष्य सृष्टि है। आगे संक्षेप से उक्त मन्त्रों का अर्थ करते हैं।

ईश्वर कहता है (मे) मेरी (सतीः) सर्वदा रहनेहारी नित्य अविनश्वर (स्त्रियः) जो ये विस्तीर्ण विविध शक्तियां हैं। यद्यपि ये शक्तियां स्त्रीस्वरूपा हैं तथापि (तान्+ऊ+इति) उन को ही विद्वान् लोग (पुंसः+आहुः) पुरुष कहते हैं। इसको (अक्षण्वान्+पश्यत्) ज्ञानी पुरुष देखते अर्थात् जान सकते (न+वि+चेद्+अन्धः) परन्तु जो ज्ञानरूप नेत्र से रहित हैं वे नहीं देख सकते किन्तु (यः+पुत्रः) जो मेरा पुत्र अधिकारी (कविः) पदार्थ तत्त्ववित् है (सः ई +आचिकेत) यही जानने में समर्थ हुआ है। हे मनुष्यो ! (यः) तुम लोगों में जो (ता) उन सम्पूर्ण पदार्थों को (विजानात्) विशेष रीति से जानता है (सः) वह (पितुः) पिता का भी (पिता) पिता (असत्) होता है। अर्थात् पुत्र पौत्रादि सहित चिरकाल जीवित रहके परम ख्याति को प्राप्त होता है। यहां यह विविध सृष्टियां

मानो स्त्रियां हैं क्योंकि स्त्रीवत् ये विविध पदार्थों को प्रतिदिन उत्पन्न कर रही हैं परन्तु इनको हम लोग पुरुष कहते हैं। अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ में स्त्रीत्व और पुंस्त्व दोनों शक्तिएं विद्यमान हैं। इसको केवल ज्ञानी जानते हैं अन्य नहीं।

य ई चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्वहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश"। ऋ० १। १६४। ३२॥ "प्र तद्वोचेदमृतं तु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहासत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानिं वेद स पितुः पिताऽसत्।" यजुः० ३२। ९॥ "न तं विदाथ य इमा जजान"। य० १७। ३१॥ "यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः। सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत्"। अथर्व० १०। ८। ३७॥

(यः+ई+चकार) जो ही पुरुष इस प्राणी को पुत्रादि रूप से उत्पन्न करता है (स) वही पिता (अस्य) इस पुत्र के विषय में (न+वेद) कुछ भी नहीं जानता। यद्यपि पिता पुत्र को उत्पन्न करता परन्तु वह उसके विषय में कुछ भी नहीं जान सकता तथापि (तस्मात्) उस पुरुष से (हिरुक्+इत्) वह परमात्मा से अन्तर्हित ही है। अर्थात् छिपा हुआ ही है (सः) वह परमात्मा के ज्ञानरहित (मातुयोर्ना+अन्तः) मातृगर्भ में (परिवीतः) बारंबार परिवेष्टित हो (बहुप्रजाः) अनेक जन्म ग्रहण करता= बहुत पुत्र पौत्रादिक उत्पन्न करता हुआ (नैर्ऋतिम्+आविवेश) केवल दुःख को ही पाता रहता है। (गन्धर्वः) जो वेद वाणी का धारण करनेहारा (विद्वान्) पंडित (नु) शीघ्र (तत्+अमृतम्) उस अमृत परमात्मा का (प्रवोचेत्) व्याख्यान कर सकता है। जो परमात्मा (गुहा) गुप्त स्थान में (सत्) विद्यमान (धाम) स्थान है (विभूतम्) स्थित है। अर्थात् अत्यन्त गोपनीय स्थान में रहता है अर्थात् अज्ञेय (अस्य) इस परमात्मा के (त्रीणि पदानि) तीन स्थान तो (गुहा निहितानि) गुप्तस्थान में छिपे हुए हैं (यः) जो विद्वान् (तानि) उनको (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः पिता+असत्) पिता का पिता होता है। (न तं विदाथ ०) हे मनुष्यो ! उसको तुम नहीं जानते हो जिसने इसको बनाया। (यः) जो (विततम्) विस्तीर्ण (सूत्रम्) सूत्र को (विद्यात्) जानता है (यस्मिन्+इमाः+प्रजाः+ओताः) जिसमें ये समस्त प्रजाएं ग्रथित हैं और (सूत्रस्य+सूत्रम्) इस सूत्र के सूत्र को भी (यः+विद्यात्) जो जानता है (स) वह (ब्रह्मणम्+महत्) महान् ब्रह्म तेज को जान सकता है।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन्यन् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदोविदुः॥ अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं

धीरमजरं युवानम् ॥ अ १० । ८ । ४४ ॥ यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठ मुपासते । यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् । इत्याद्यने केपु स्ववचनेषु स्वयमेव भगवान् भूतभावनः परमर्षिर्विदि तदर्थकधातुप्रयोगैः “पदार्थविज्ञानायैव मनुष्यान् मृजामीति" परममाननीयां शाश्वतीं समीहां प्रकटयति। महर्षीणां प्रवृत्तिं पश्यत। “भृगुःर्वैवारुणिः। वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्मोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचम्" । तैत्तिरीये। "अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः। तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यागीति" छा० ७ । १ ॥

(पुण्डरीकम्) नवद्वार सहित त्रिगुणों से संयुक्त जो यह शररीररूप कमल है (तस्मिन्) उस शरीर में परमात्मा सहित जो जीवात्मा है उसी को बड़ा विद्वान् लोग समझते हैं।

(अकामः०) अकाम, धीर, अमृत, स्वयम्भू, सदातृप्त, निर्भय जो परमात्मा है उसको जानता हुआ पुरुष पुनः मृत्यु से नहीं डरता है। (यत्र देवाः ०) जहां ब्रह्मविद् पुरुष ब्रह्म की उपासना कर रहे हैं उनको जो जानता है वही विज्ञानी ब्रह्मा है। इत्यादि वेदों में बहुत मन्त्र हैं जिनमें विस्पष्टरूप से कहा हुआ है कि विना पदार्थों के ज्ञान से मनुष्यों का कल्याण नहीं हो सकता। अब ऋषियों की प्रवृत्ति देखो: - वरुण पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के निकट गये और बोले हे भगवन् ! मुझ को ब्रह्म के विषय में पढ़ाइये। भृगु से वरुण बोले, इस प्रकार उपदेश दिया:- अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वचन इत्यादि।

नारद सनत्कुमार के निकट विद्याध्ययन के लिये गये। नारद से सनत्कुमार बोले हे नारद ! आप जितने जानते हैं उन सबों को प्रथम सुनाओ। उसके आगे आपको मैं उपदेश दूंगा।

"श्वेतकेतुहारुथ आस। तं ह पितोवाच श्वेतकेतो ! वस ब्रह्मचर्य्यं। न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति। स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य" एयाय” । “ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद ॥"

अन्यच्च-इतरेषां पशु-विहग-सर्प-सरीसृपादीनां निसर्गत एव स्वजीवनोपयोगिशिक्षाबोधाश्च जायन्ते। स्वस्वजातिजाः कठिना अपि विद्याःस्वभावेनैव विना प्रयासेन जन्मत एवोपलभ्यन्ते नैतन्मनुष्येषु कचिद्दष्टम्। नहि कोऽपि प्लवङ्गशिशून् वृक्षप्लुतिं शिक्षते। नहि विहगान् तालपत्रावलम्बिनो लघून् सुन्दरान् गृहान् निर्मातुं कोप्यध्यापयति।

मत्स्या जन्मत एव जलेषु तरन्ति। भ्रमरा केन नैपुण्येन सरधां विदधति। एवमधीयन्तामितरेषां स्वभावाः।

अरुणपुत्र श्वेतकेतु किसी समय में कहीं हुए। पिता ने उन से कहा कि हे पुत्र श्वेतकेतो! ब्रह्मचर्य करो। मेरे कुल मे कोई अननूचान (वेद के न जाननेवाले) नहीं होते। वह श्वेतकेतु १२ वर्ष की अवस्था में आचार्य्यं के यहां जाकर २४ वर्ष की अवस्था तक सारी विद्या अध्ययन करते रहे। तत्पश्चात् गृह पर लौट आये। हे ब्रह्मचारियो ! सत्यता धारण करो और इस के साथ पढ़ो और पढ़ाओ। सत्य पदार्थ को जानो और इसके साथ स्वाध्याय (निज पठन) प्रवचन (दूसरों को पढ़ाना) भी किया करो। स्वाध्याय से प्रमाद् मत करो। स्वाध्याय प्रवचन से प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिये। मातृमान् पितृमान् और आचार्यवान् पुरुष जानता है।

इत्यादि ऋषि महर्षि मुनि महामुनियों की प्रवृत्ति से भी विदित होता है कि कुछ जानने के लिये ही यह मनुष्य सृष्टि है। और भी, पशु, विहग, सर्प, सरीसृप इत्यादि मनुष्यों से भिन्न जीवों को स्वभाव से ही निज जीवन के उपयोगी शिक्षा और बोध उत्पन्न होजाते हैं। स्वस्वजाति की कठिन भी विद्याएं स्वभाव से ही विना प्रयास के ही उनको जन्मते ही प्राप्त होजाती हैं। परन्तु मनुष्यों में ऐसा कहीं नहीं देखा गया। वानरों के बच्चों को वृक्ष पर कूदना कोई नहीं सिखलाता है। तालवृक्षों के पत्रावलम्बी छोटे छोटे सुन्दर गृहों को बनाने के लिये पक्षियों को कौन पढ़ाता है । मछलियां जन्म से ही पानी में तैरने लगती हैं। भ्रमर किस निपुणता के साथ मधुछत्ते को बनाते हैं। इस प्रकार अन्य जीवों के स्वभावों को पढ़ो।

किन्तु नाध्ययनेन विना विदुषां तनया विद्वांसो भवितुमर्हन्ति। मातृतःपितृत आगच्छन्ति बहवो गुणाः। परन्तु विद्यासम्बन्धिवार्तास्ते यदि च न जानीयुस्तर्ह्येतेषा-मितरजीववन्निर्वाहोऽपि दुष्कर एव। किं बहुना, यथायथेस्मिन् विवेक्षयन्ति तथातथेदं वेदिष्यन्ति भवन्तः। पदार्थानां तत्त्वज्ञानायैवेयं मानवी सृष्टिरिति। सम्पूर्णेयं बृहदारण्यकोपनिषत्प्रधानतया शिक्षते। तदिहोपरिष्टात् यथायथं व्याख्यास्यामः। ग्रन्थविस्तरभयान्न कमप्यर्थं विस्तारयिष्यामः। संक्षिप्यैव प्रकटित आशयो बहुधा बुद्ध्या विधातव्यः। तच्च पदार्थतत्त्व विज्ञानमध्यवसायं विना नहि कदापि मनुष्य उपलब्धुमर्हः स हीदृग् विजिज्ञासावानपि भूत्वा अलसोभवतीत्याश्चर्यम्। यदा ईषत्प्रयोजनवन्तोऽप्यन्ये जीवाः एकं क्षणमपि प्रयत्नशून्य-मालस्ययुतं कुर्वन्तो न दृश्यन्ते।

एवं बुद्धिमन्तोऽपि वेदैरनुगृहीता अपि पृथिवीस्थाऽशेष जीवेभ्यो भूयांसोऽपि उपायैरखिलं दुःखमुपशमयितुं शक्ता अपि यद्दुःखमेवाद्यावधि भुञ्जन्ति मानवाः।

परन्तु विद्वानों का पुत्र अध्ययन के विना कदापि भी विद्वान् नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि माता पिता से बहुत गुण आते हैं, परन्तु विद्यासम्बन्धी वार्ता नहीं आती और मनुष्य यदि उन्हें न जानें तो इनका इतर जीववत् निर्वाह होना भी दुष्कर है। बहुत क्या कहैं, जैसा-२ इस विषय में विवेक करेंगे वैसा-२ आप जानेंगे कि पदार्थों के तत्त्वज्ञान के लिये ही मानवसृष्टि है। यह सम्पूर्ण बृहदारण्यकोपनिषद् प्रधानतया इसी को सिखलाती है। इसको आगे यथास्थान में व्याख्यान करेंगे, संक्षेप से प्रकटित आशय ही बुद्धि से बहुत कर लेना चाहिये और उस पदार्थतत्त्वविज्ञान को अध्यवसाय (परिश्रम) के बिना मनुष्य कदापि भी नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य ऐसा जिज्ञासावान् होकर के भी अलस होजाता है यह बड़ा आश्चर्य है। जब थोड़े प्रयोजनवाले अन्यजीव अपने एक क्षण को भी प्रयत्नशून्य और आलस्ययुक्त करते हुए नहीं देखे जाते तो क्या ही आश्चर्य है कि बहुप्रयोजनवान् मनुष्य प्रयत्नशून्य हो।

ऐसे बुद्धिमान्, वेदों से अनुगृहीत, पृथिवी के अशेष जीवों से बड़े और उपायों से निखिल दुःखों के उपशमन करने में समर्थ होने पर भी ये मनुष्य सन्तान जो आजतक दुःख ही भोग रहे हैं इसका प्रयत्न विरोधी अज्ञान ही कारण प्रतीत होता है।

तस्य प्रयत्नविरोध्यज्ञानमेव कारणम्। अस्त्यैहिक पारलौकिकीभ्यां भिन्ना तृतीया केवला सात्त्विकी चेष्टा या भक्तिशब्देन ज्ञानशब्देन वा व्यवह्रियते। परमे ब्रह्मणि परमा निष्ठा भक्तिर्शनम्वा। यो वाव मानव्या अशान्तेर्हेतून् सम्यग् विज्ञाय केवल कल्पनोद्भवामामुष्मिकीं कथाञ्च तिरस्कृत्य वेदत आचार्यतः स्वात्मानुभूतितश्च मनुषजनि प्रयोजनमवधार्य्यं निःश्रेयस-पथप्रदर्शक निखिलानन्दप्रदं सर्वप्राणि सुखावहं ब्रह्ममहिमानमुपधावति। सह्यस्याः सात्त्विक्याचेष्टाया अनुग्रहपात्रम्। स तृतीयाया एकमात्रामपि यदि लब्धुमनुकम्प्यते प्राक्तनसुसंस्कारैर्ब्रह्मप्रसादेन वा तर्हि तयैवैकमात्रया सहितः स यावत्सुखं जनेभ्यः प्रयच्छति तावत्सम्राडपि समस्तैरेव सम्पत्त्यंशैर्दातुं न शक्नुयात्कालत्रयेऽपि।

आजतक दुःख ही भोग रहे हैं इसका प्रयत्न विरोधी अज्ञान ही कारण प्रतीत होता है। इस हेतु अज्ञान के नाशार्थ चेष्टा करनी मनुष्य का कर्तव्य है। यह जगत् स्वार्थसिद्धि के लिये ऐहिक वा पारलौकिक चेष्टा में सर्वदा आसक्त रहता है परन्तु नितान्त प्रेमियों की कथा और चेष्टा इन सब से विलक्षण होती है। ऐहिक पारलौकिक से भिन्न एक तृतीया केवल

सात्त्विकी चेष्टा है जिसको भक्ति वा ज्ञान कहते हैं, परब्रह्म में परम जो निष्ठा उसी को भक्ति वा ज्ञान कहते हैं। जो मानवी अशान्ति के हेतुओं को अच्छे प्रकार जान, केवल कल्पना से जिसकी उत्पत्ति है ऐसी पारलौकिक कथाओं को तिरस्कार कर वेद, आचार्य और निजात्मानुभव से मनुष्य जन्म के प्रयोजन को निश्चित कर निःश्रेयसमार्गप्रदर्शक निखिलानन्दप्रद सर्वप्राणिसुखावह ब्रह्ममहिमा की ओर दोड़ते हैं। वे इस सात्विक चेष्टा के अनुग्रह के पात्र बनते हैं। जो पूर्वजन्म के संस्कार से अथवा ईश्वर की कृपा से यदि तृतीय चेष्टा की एक मात्रा को भी पाने को अनुकम्पित (अनुगृहीत) होता है तो वह उसी एक मात्रा से युक्त हो मनुष्यों को इतना सुख पहुंचाता है कि जितना सम्राट् भी समस्त धनसम्पत्तियों से त्रिकाल में भी नहीं दे सकता है।

तथाहि, सांख्येन परमर्षिः कपिलो वेदान्तेन कृष्णद्वैपायनो, वैशेषिकरण कणभक्ष आन्वीक्षिक्याऽ क्षचरणो मीमांसयाजैमिनियोगेन पतञ्जलिर्व्याकरणेन दाक्षीपुत्रः पाणिनीरामायणेन आदिकविर्वाल्मीकिः सम्प्रत्यपि रघुवंशादि-काव्येन कालिदासो गणितेन भास्कराचार्यो भाषारामायणेन तुलसीदासश्चेत्यादयो महात्मानस्त्यतैषणा दृष्टब्रह्मविभूत्येकांशाः सम्मति कीर्त्यैकशेषा अपि यावत् सुखं लोकेभ्यो वितरन्ति कः खलु सम्पूर्णपृथिवी धनराशिसम्पन्नोऽपि तावद्धनं विश्राणयितुं पारयेत। अहो विद्यावतामीश्वरदृक्पातपात्रीभूतानां प्रभावः। एकेनैव दण्डेनाग्नेयशकटेन विना विंशतिं क्रोशान् अतिवाहयितुं सुखेनानायासेन सुहृद्भिः सहालपन्नेव गायन्नेव स्त्रपन्नेव केनेतरेण यानेन शक्नुयात्। सहस्रकोशेषु स्थितस्यापि प्रियस्य संवादं क्षणमात्रेण प्रापयितुंतडित्तारव्यापारं विना निःशेषभूजनाः संमिलिता अपि नसमर्थाः। कः खलु पृथिव्यामीदृग् धनिको वा भूपतिर्वा वर्त्तते यो धनबलेन राज्यबलेन वा इतोऽनेकलक्षयोजनेषु दूरेषु विचरदपि नक्षत्रमण्डलं प्रत्यासन्यमिव कृत्वा दर्शयित्वा च सर्वतो विद्वज्जनकुतूहल-मपनोदितुमर्हति। एष तु ज्ञानिनामेव प्रभावः।

देखो सांख्य से परमर्षि कपिल, वेदान्त से कृष्णद्वैपायन, वैशेषिक से कणाद, न्याय से गोतम, मीमांसा से जैमिनि, योग से पतञ्जलि, व्याकरण से दाक्षीपुत्र पाणिनि, रामायण से आदिकवि वाल्मीकि, आजकल भी काव्यों से कालिदास, गणित से भास्कराचार्य, भाषारामायण से तुलसीदास इत्यादि महात्मा जो ऐषणाओं से रहित, ब्रह्म विभूति के एक-२ अंश के दर्शक है आजकल यद्यपि इनकी कीर्तिमात्र अवशेष है तथापि ये जितना सुख लोगों को दे रहे हैं, कौन मनुष्य पृथिवीस्थ सम्पूर्ण धनराशि से युक्त होकर भी उतना सुख

देने में समर्थ होगा। अहो ! ईश्वर की दृष्टिपात के पात्रीभूत विद्यावान् पुरुषों का प्रभाव देखो, आग्नेय शकट (रेलगाड़ी) के विना एक दण्ड में २० । २५ क्रोश पहुंचने में सुखपूर्वक अनायास से सुहृदों के साथ आलाप करता, गाता हुआ ही सुख से सोता हुआ हंसता हुआ ही अर्थात् सर्व सुख से ही अन्य यान से समर्थ हो सकता है। सहस्र क्रोशों पर स्थित भी प्यारे के सम्बाद को क्षणमात्र में पहुंचा देने में तड़ित तार के व्यापार के विना सब मनुष्य मिलकर भी समर्थ नहीं हो सकते। पृथिवी पर कौन ऐसा धनिक वा भूपति है जो धनबल से वा राज्यवल से अनेक लक्षयोजन दूर पर विचरण करते हुए भी नक्षत्रमण्डल को मानो समीप में लाकर और सब प्रकार से दिखला विद्वज्जन के कुतूहल को दूर करने में योग्य होवे। यह सब ज्ञानियों

ये हि दूरवीक्षणयन्त्रादिकं प्रकाश्य दुर्लभेनापि वस्तुना प्रजामनोरथं पूरयन्ति। ईदृशाः शतशो महिमानो विराजन्ते पृथिवीतले तेषां ब्रह्मविभूति महोदधेरभिपुखीनानां महात्मनाम् इमे श्रोत्रिया ब्रह्माऽऽज्ञा-प्रचार-व्यग्रीभूता जनहितसाधनव्रतपरायणास्तृणीकृत-संसारिक-विभूतयो वसिष्ठ विश्वामित्रा-अत्रि-कश्यपगोतमाङ्गिरोवामदेवागस्त्यप्रभृतयो यानि यान्यद्भुतानि कार्यांणि सम्पाद्य प्रजाभ्यो हितमकार्षः तदुपवर्णनेऽपि न केषाञ्चिद् वाणीप्रसारः। एतेषामेव महापुरुषाणां नितान्तमनुष्यसुखेच्छनामुद्योगमभावो यदिदानीमपि मनुष्या धर्ममाचरन्तः सुखभाजनानि भवन्ति।

यह सब ज्ञानियों का प्रभाव है जो दूरवीक्षण यन्त्रादिकों को प्रकाशित करके दुर्लभ वस्तु से प्रजाओं के मनोरथ को पूर्ण कर रहे हैं। उनके ऐसे-२ शतशः महिमा पृथिवीतल में विराजमान हैं जो लोग ब्रह्मविभूतिरूप महोदधि की और अभिमुख हुए हैं। इन लोगों से भी अधिक श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञाप्रचार में व्यग्रीभूत जनहित-साधनव्रतपरायण और सांसारिक-विभूति को जिन्होंने तृणवत् समझा है ऐसे-२ वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, कश्यप, गौतम, अङ्गिरा, वामदेव, अगस्त्य प्रभृति महर्षियों ने जिन-२ अदभुत् कार्यों को सम्पादन करके प्रजाओं का हित किया। उसके वर्णन करने में भी किन्हीं की वाणी का प्रसार नहीं है। इनहीं महापुरुष और नितान्त मनुष्यसुखेच्छु महिर्षियों के उद्योग का प्रभाव है कि आज भी मनुष्य धर्माचरण करते हुए सुख के पात्र होते हैं॥

॥ इति ब्रह्म-भक्ति-दर्शनादि विचारः ॥